हिन्दी नाटकों में समाजिक मूल्य

डॉ. श्रीधर पी. डी.
विभागाध्यक्ष - हिन्दी विभाग , क्रिस्तु जयन्ती कालेज, के. नारायणपुरा, कोत्तनूर पोस्ट, बेंगलूरू.

मानव का जन्म भावनाओं के साथ होता है। वह अपने भाव अथवा मनोविकारों को प्रस्तुत करना मानव का प्रकृति सहज गुण हैं। अपने भावनाओं की रसयुक्त प्रस्तुति से ही उसका चरित्र बनता है। इसी भावनाओं का आदान-प्रदान ही दृश्य काव्य है। श्रव्यकाव्य का परिचय हमें गुरुजनों या बुजुर्गों से प्राप्त हुई हैं। इसी श्रव्यकाव्य का संबन्ध दृश्यकाव्य से है। दृश्यकाव्य को सामान्य भाषा में 'नाटक' तथा शास्त्रीय भाषा में 'रूपक' कहा जाता है। पद्य और गद्य का मेल होकर, सशक्त और प्रभावी रूप में पाठक या प्रेक्षक के सामने प्रस्तुत, विशेष संवादी साहित्य प्रकार को दृश्यकाव्य कह सकते हैं अथवा हम यह तय कर सकते हैं कि, नाटक साहित्य को न पहचानने वाले इस लोक में कोई नहीं हैं। नाटक या एकांकी का उद्भव और विकास श्रव्यकाव्य और दृश्यकाव्य दोनों रूप में हुआ है। माना जाता है कि लिपि का उपयोग जब प्रारम्भ नहीं हुआ था, तब श्रव्य काव्य ही दृश्यकाव्य का रूप लेकर संपर्क सेतु बना हुआ था। मान सकते हैं कि नाटक का जन्म भी ऐसा ही हुआ होगा। संघर्ष मानव जीवन का मूल गुण तथा विकास का जरिया है। इसी प्रकार का जीवन से जुडा संघर्ष ही समाज, व्यवस्था, नियम, देश, संस्कृति, व्यक्तित्व जैसे विषय, नाटक या एकांकी के रूप में रंगभूमि या मंच पर व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत होते आए होंगे। समय के अनुसार मनुष्य में विशेष प्रकार का सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों का बोध जागृत हुआ। अपने अस्तित्व की रक्षा केलिए, अपने जीवन हित हेतु मनुष्य को संघर्ष करना पड़ा।[1] इसी संघर्ष के बीच समाज में वर्ग-विभाजन, शक्ति तथा धन के माध्यम से प्रभुता स्थापित करने का प्रयास होता देखा गया। उस समय मानवीय संबन्धों का विशेष रूप से परिमार्जन और परिवर्तन निरंतर होने लगा। इस बदलाव की स्थिति में समाज में मनुष्य की प्रतिष्ठापना का अर्थ अनेकों प्रकार से बदलने लगा। साहित्यकार अपने सृजन में उन परिवर्तनों को अंकित करते आ रहे हैं। इन आधारों पर ही प्रत्येक काल से संबन्धित सांस्कृतिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि संर्घर्षों का परिचय हमें प्राप्त होते आ रहे हैं।[2] विवेक और चेतना से ही मनुष्य विचार संपन्न होता है, दुनिया में प्रत्येक सामाजिक सुविचारवान् साहित्य मानवीय विचारों को प्रभावित करता है। इसमें किस प्रकार की विचारधारा समाजमुखी है और किस प्रकार की विचारधारा समाज के विरुद्ध है यह तय करना सामान्य के लिए अत्यंत कठिण है। इसी अज्ञान के कारण हमें सहिष्णुता और असहिष्णुता में फर्क नज़र नहीं आता। जाती और स्वार्थ के कारण हम सहिष्णुता और असहिष्णुता दोनों में तड़पते और तड़पाते रहते हैं। मेरा मत यह है कि वेद-उपनिषद् तथा रामायण-महाभारत जैसे महाकाव्यों के धरातल पर निर्मित भारतीय साहित्य और संस्कृति, विदेशी आक्रमणों से प्रताड़ित होकर, पाश्चात्य अंधानुकरण में उन्मत्त होकर, वादों के विवादों में गिसपिटकर, आधुनिकता में अंधा बनकर, जातिवाद की मूर्खता में राजनेता बनकर, नौकरशाही के साम्राज्य में महापवित्र भ्रष्टाचारी होकर, ज्ञान मार्ग पर संकुचित होकर, वाम मार्ग में स्वार्थी बनकर एक अपनी ही प्रकार की विकृति की ओर बड़ रही है। आज युआवों में जाती और राजनीति के प्रति निरासक्ति और कर्तव्य के प्रति आसक्ति की एक आशा की किरण दिखाई देती है तो, दूसरी ओर विदेशी और पाश्चात्य संस्कृति की ओर अंधा आकर्षण उनके अज्ञान को दर्शाती है। इस प्रकार का कुप्रभाव 21वीं सदी के नाटककारों को भी नहीं बक्शा है। आधुनिकता के प्रभावी इस समय में उपस्थित सभी साहित्यप्रेमी और पाठकगण को इस ओर आकर्षित करना अनिवार्य है।

21वीं सदी में प्रकाशित नाटक साहित्य को समझने के लिए समय की कमी महसूस होती है। क्योंकि, हमारे जीवन को टीवी रिमोट कंट्रोल कर रहा है और इंटरनेट हमें फसाने के लिए जाल बुन रहा है। इनके जाल में लिपटे नाटककार का उद्धेश्यको और उस दृश्यकाव्य को झेलनेवालों की जिज्ञासा के बीच में संबन्ध करवाना, साथ ही साथ उन संबन्धों को, विद्वानों के सम्मुख चर्चा हेतु

उपस्थित करना, मेरे लिए पहाड़ को खोदने के बराबर है।[3] पहाड़ खोदने के बाद अंत में अंधकार रूपी समाज के समुंदर में हाथ मार रहा हूँ। साहित्य के संबन्ध में चाहे सोडा गिलास से भी, मोटा चश्मा डालकर गूगल करलो, दक्षिण के लेखकों को, अजीब सा डर बना रहता ही है। क्योंकि, उत्तर के ज्ञानी, हिन्दी साहित्य के उत्तराधिकारी हमें व्यंग्य हसी के साथी सुनते रहते हैं। फिर भी दिखावे के धैर्य के सहारे 21वीं सदी के नाटक साहित्य के संबन्ध में, कुछ स्वरचित शीर्षक और उपशीर्षकों के साथ जुगुनु के जैसे फिल्मी रंगों से लिप्त नाटक अथवा दृश्यकाव्य को देखने का, मैंने यहाँ प्रयत्न किया है।

वेद,उपनिषद और पुराणों से संबन्धित नाटक

समस्त साहितियक अभिव्यक्तियों में नाटक को सर्वोपरी स्थान प्राप्त हुआ है। कारण यही है कि, इसमें काव्यानन्द के साथ अन्य कलाओं का आनन्द भी प्राप्तहोता है। वस्तुत: नाटककार किसी पात्र के द्वारा अपना मन्थव्य या अमृत समान विष को प्रेक्षक के सम्मुख परोसता रहता है। कला कला के लिए है? या जीवन के लिए है? दृश्यकाव्य में इस प्रश्न का उत्तर कुछ इस प्रकार मिलता है - काव्यानन्द की उत्कृष्ट स्थिति में पहुँचकर, नाटक के उपभोक्ता को, जीवन और कला में पवित्र मिलन दिखाई देता है। भरतमुनी के मतानुसार – नाटक में दैत्य और देवताओं का, दोनों के भले-बूरे कार्यों का, उनके भावनाओं का, चेष्टाओं का समावेश होता है। यह नाट्य तीनों लोकों के भावों का अनुकीर्तन होता है। इसमें उत्तम, मध्यम और अधम सभी प्रकार के चरित्रों का दर्शन होते हैं। सातों द्वीपों के वासि, देवताओं, ऋषियों, राजाओं और उनके कुटुम्बियों के कार्यों का अनुकरण जहाँ देखने को मिलता है वहीं नाटक होता था। नाटक रचना का उद्धेश्य और कथावस्तु को प्रारंभ, प्रयत्न, प्राप्याशा, नियताप्ति और फलागम नामक पाँच कार्यावस्थाओं को, पार करना पड़ता है। 'संवाद' नाटक का प्राण तत्व है। नटना कौशल और रंगमंच पर प्रस्तुति, नाटक का यश या सफलता को निर्धारित करती है। रंगमंच पर किसी विषय को दृश्यकाव्य के रूप में प्रस्तुत करते समय किन विचारों का समागम होना चाहिए इस पर नाट्य शास्त्र में कुछ इस प्रकार वर्णन किया गया है-

"नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पंचसंधि समन्वितम्।
विलासद्धर्यादि तद्गणदद्युक्तं नाना विभूतिभि।।
सुख दुःख समुद्भूति नानारस निरंतरम।
पंचादिका दश परास्त्रांका: परकीर्तता।।"[4]

मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्शा या अवमर्शा, निर्वहण या उपसंहार नामक पाँच संधियाँ नाटक को विभाग करते हैं, नाटक के प्रकार, नाटक में वर्ण्य विषय और नाटक की सार्थकता, और नाटक के प्रति पाश्चात्य और भारतीय विचारधाराओं को समझने से, पाठक प्रबुद्ध प्रेक्षक बन जाता है। भारतीय आलोचकों ने नाटक के पाँच तत्त्व निर्धारित किये हैं जैसे – वस्तु, पात्र, रस, अभिनय और वृत्ति। पाश्चात्य आलोचक वस्तु, पात्र, कथोपकथन, देशकाल, शैली और उद्देश्य नामक छ: तत्त्व का वर्णन करते हैं। हिन्दी नाटक साहित्य में डॉ. दशरथ ओझा के अभिप्राय में 1281 में लिखा गया 'गयसुकुमाररास' को हिन्दी का प्रथम नाटक मानते हैं। इसके साथ-साथ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा 1930 में लिखा गया 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवती' रचना को हिन्दी का पहला मौलिक नाटक माना जाता है।

धर्म, वर्ण, जाति, परम्परा, विरासत, संस्कृति, पुराण, तत्त्व, भक्ति, ध्यान, योग, याग, तप, नीति, गुणावगुण, संबन्ध, दोस्ती, दुश्मनी जैसे मानव भावनाएँ एवं क्रियाओं के सभी पहलुओं को नाटक में दर्शाया जा सकता है। रामायण और महाभारत में आनेवाले सभी पात्रों और घटनाओं को हम व्यष्ठि रूप में देखेंगे तो, इन महाकाव्यों को परखने की राह में प्रेक्षक या पाठक की जिज्ञासा में कमी ही कह सकते हैं। क्योंकि, जितनी घटनाओं तथा पात्रों के वैचित्र्य को, हम रामायण और महाभारत में देखते हैं, आज के सभी घटनाओं और व्यक्तियों से उनका संबन्ध जरूर जोड़ सकते हैं। डॉ पशुपति उपाध्याय द्वारा 2012 में प्रकाशित 'हिन्दी नाटक एवं रंगमंच' ग्रन्थ में कहते हैं कि – "अत्यन्त प्रखरता, सहजता एवं स्वाभाविकता के साथ मुखरित और विकसित होने वाली नाट्य विधा, मानवीय मूल्यों और जीवनादर्शों की प्रस्तुति और अभिव्यक्ति करवाती है।"[5] इसके साथ ही श्री कृष्ण बलदेव वैद जी के प्रकाशित 'भूख आग है'-1998, 'हमारी बुढ़िया'-2000, 'मोनालिजा की मुस्कान'-2003, 'परिवार आकड़ा' -2002, 'कहते हैं जिसको प्यार'-2004 – इन नाटकों में आधुनिक जीवन के प्रति विडम्बना, स्त्री-पुरुष संबन्ध और अनेक अस्पष्ट उद्धेश्यरहित जीवन पर करारा व्यंग्य किया गया है। यहाँ नाटककार का मूल उद्धेश्य ही समाज सुधार है।[6] श्री नरेन्द्र मोहन जी के प्रकाशित 'अभंगगाथा'-2000, और 'मिस्टर जिन्ना'-2005 नाटकों में देश विभाजन, संतो का जीवन में सत्यान्वेशन, शोषण, वर्ग और वर्ण संघर्ष पर केन्द्रीत विषय हैं। 2004 में श्री मीराकांत के 'नेपथ्य युगनाटक' में स्त्री शोषण को मुख्य विषय माना है। श्री जयप्रकाश राज पुरोहित के 2007 में

प्रकाशित 'विजयधर्मा' नाटक में मातृभूमि की प्रतिष्ठा को ध्यान में रखते हुए राष्ट्र धर्म निर्वहण के बारे में बताया गया है। इसी तरह जी.जे. हरिजीत जी का 'संभवामी युगे युगे- नाटक में महाभारत की कथावस्तु का आधुनिक दृष्टिसे विश्लेषण करने का प्रयत्न किया गया है। इस नाटक में नाटककार का देशप्रेम, राष्ट्रीय चिंतन और सामाजिक उत्तरदायित्व की झाँकी मिलती है। उनकी प्रत्येक रचनाओं में राजनीति पर व्यंग्य रहता है। इस नाटक की रचना काउद्धेश्य है कि- वर्तमान शासन प्रणाली में सुधार लाना, भारतीय संस्कृति का उत्थान करना, जनता में राष्ट्र के प्रति जागृति पैदा करना और अन्याय का विरोध करना है। समय रहते हम सब लोगों को सचेत करनेवाले हरिजीत हमें और समाज को आत्मविश्लेषण करने के लिए विवश कर देते हैं।

शंकरशेष का 'एक और द्रोणाचार्य' - नाटक में मध्यम वार्गीय परिवार में तड़पता एक प्राध्यापक, भ्रष्ट समाज, चापलूस दोस्त, स्वार्थ समाज, भटके हुये युवावर्ग, गरीब-गृहस्थी के भार में दबे स्त्री के वर्णन और विश्लेषण एक ओर है तो, दूसरी ओर द्वापर युग में द्रुपदसे अपमानित द्रोणाचार्य, वर्णाश्रम के शिकार एकलव्य, स्वार्थि अंधाभिमानी अर्जुन, ज्ञान के अहंकारी द्रोण, राजनीति के विष सागर में डूबा कुरुवंश की नीव संभाले कुछ भी करने को तैयार भीष्म जैसे पात्रों का विश्लेषण है। साथ ही इस नाटक में आधुनिक विडम्बनाओं के साथदिखावे के जीवन, राजनेताओं का स्वार्थ, अमीरों का दुरभिमान-अव्यवहार आदि विचारों का इस नाटक में पौराणिक घटनाओं के साथ तुलनात्मक विश्लेषण है। आधुनिक प्रामाणिक दिखनेवाला अरविन्द का द्रोणचार्य से, लीला का कृपि से, चन्दू का एकलव्य से, राजकुमार का अर्जुन से यहाँ तुलना करके आधुनिक घटनाओं का संघर्ष पुराण कथाओं के साथ कराते हैं। विशेष यह है कि, कृतयुग, त्रेत्रायुग, द्वापरयुग की घटनाएँ और पात्र आधुनिक समाज में भी सशक्त रूप में प्रचलित पाये जाते हैं। दुर्योधन का द्वेष, अर्जुन का वीरत्व, धर्मराज का न्याय, भीष्म की प्रतिज्ञा, शकुनि की राजनीति, कृष्ण का कुटिल न्याय, दुश्यासन का अन्याय, द्रौपदी का अपमान, कुन्ती और माद्री की असहायकाता, गाँधारी का द्वेश, दृतराष्ट्र का अंधा प्रेम, कर्ण का व्यक्तित्व, इंद्र का स्वार्थ, राम का व्यक्तित्व, सीता का त्याग, रावण की नीचता, युद्ध की विभीषिकता, अधिकार या युद्ध के पीछे जाने वालों का नाश, भीम की शक्ति, हनुम की भक्ति क्या नहीं हुआ उस पुराण काल में। फिर भी हम सब चलते है स्वार्थ की राह में ही। विशेष इतना ही है कि, इतिहास और पुराण को भूलकर कभी भी जीवन में लक्ष्य हासिल नहीं होता है। कर्मसिद्धांत पर टिका यह मनुष्य जन्म का विश्लेषण इक्कीसवीं सदी के नाटककार भी उसी प्रकार करते हैं, जिस प्रकार हमारे पूर्वजों ने किया था। व्यवस्था, राजनीति और सामाजिक संघर्ष को दर्शाने में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जी का 'बकरी' नाटक श्रेष्ठ कार्य करती है। जिसमें वर्णाश्रम, देहातों का अज्ञान, युवाओं का संघर्ष, राजनेताओं का श्रीसामान्य के प्रति अन्याय, स्वार्थ साधना हेतु संविधान के तीनों अंग यानी कार्यंग, शासकांग और न्यायांगों को गुलाम बनाकर रखना, ज्ञानोत्कर्ष के साथ गाँववालों का विद्रोह जैसे अनेक विषयों की चर्चा इस नाटक में विश्लेषित किए गए हैं। नाटक के पात्र दुर्जनसिंह, कर्मवीर, सत्यवीर, सिपाही, विपती, युवक आदि नाम ही नाटक के उद्धेश्यकी ओर इशार करते हैं। भारत का अनपढ़ गाँववालों को अनेकों प्रकार से मूर्ख बनाकर देश नाश पर तुले राजनेताओं पर यह नाटककारारा प्रहार करता है। गंवॉर विपती की बकरी की चोरी कराकर, इस नाटक में उसको 'गाँधीजी का बकरी' का नाम देकर, उसका मंदिर तथा आश्रम बनाकर गरीबों से दान संग्रह करते हैं, इस अन्याय का कोई विरोध करता है तो अनेकों प्रकार से उसको डरा धमकाकर दबा देते हैं। आज भी राजनेता प्रवाह आने पर प्रफुल्लित, भूचाल आने बहुत खुश, अकाल पड़ने पर आनन्द प्रकट करते हैं। परिवर्तन के लिए संघर्ष, विद्रोह और क्रांति आज के नाटककारों का मूल तत्त्व मान सकते हैं। अगर यही उद्धेश सही राह पर चले तो सामाज का उद्धार की आशा कर सकते हैं। इस महान् देश हित विद्रोह में मीडिया का हाथ बहुत बड़ा है। इसी बात को डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी अपना नाटक 'भारत दुर्दशा नम्बर दो' में आज की भारतीय परिस्थिति पर व्यंग्य कसते हैं। इसमें प्रगतिशीलता, प्रतिबद्धता और मानसिक द्वंद्व के लिए सामाजिक कारण भी बहुत मिलते हैं।

भारतीयता के बदलते परिप्रेक्ष में नाटकों के समसामायिक परिवेश के प्रति विमर्श प्रकट करना बहुत ही कठिण है। एक ओर नाटक विधा की शिल्पगत नव्यता, बहु प्रकार के प्रयोग शीलता, विषय चयन में विविधता और मंचीकरण में विज्ञान और इंटरनेट की विशेषता, अन्य रियालिटी शो जैसे प्रकारों से संघर्ष जैसे अनेक विषय मौलिक और मानवीय संबन्धों से परे नज़र आ रहे हैं। तत्त्व, संस्कृति, ग्रन्थ, समीक्षात्मक दृष्टिकोण का अभाव आज के मंचस्थ नाटकों में खटकता है। देश, काल तथा वातावरण साहित्य सर्जना पर अपना प्रभाव डालता ही है। तदनुसार समकालीन नाटकों में मानवीय संबन्धों के सुप्रस्तुति के बदले विकृति का विसंतोष तांडव नृत्य कर रहा है। कालेज में साहित्य संबन्धी सेमिनार या ग्रन्थ विमोचन होता है तो उसका मीडिया पर प्रचार नहीं होता। इन्हीं कारणों के चलते युगीन परिस्थितियाँ, सामाजिक विसंगतियाँ सामाजिक मूल्यों को गौण बनाके रखे हैं। आजके नाटकों में सामान्यत: संवाद, टकराहट, अश्लीलता ही ज्यादा मंचस्थ दिखाई देता है। स्वतंत्रता पूर्व नाट्य सृजन काल में पारस्परिक संवेदनात्मक जीवनमूल्यों की सक्रीयता के प्रति समर्पण भावना थी, उसका लोप आज के दृश्यकाव्य के आधुनिक प्रस्तुतियों में दिख रहा है।

सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, साहित्यिक आदि मूल्यों का द्वन्द्वात्मक चित्रण आज का नाटक कर रहा है। यहाँ तक कह सकते हैं कि जाति जरासंध के ज्वार में हम सब विचारहीन असहिष्णु अज्ञानी बनकर बिना दृष्टि आधुनिकता के दिवार से टकरा रहे

हैं। सामाजिक मूल्यों के लिए ज्ञान मार्ग द्वार होने पर भी क्षणिक स्वार्थ की ओर आकर्षित होकर विनाश की ओर हम सब खिसक रहे हैं। आज के नाटककार राजनैतिक और सामाजिक जीवन में व्याप्त विषमताएँ, असमानता, भूक, गरीबी, आतंकवाद, सुरक्षा, संप्रदाय तथा अलगाववाद, प्रकृति और प्रदूषण की समस्याओं से आकर्षित हुआ है। 80 प्रतिशत आज के नाटककार मध्यमवर्गीय समस्याओं को अपने नाटकों में दर्शाना चाहता है। जिसमें नाटककार आर्थिक, राजनैतिक, स्त्री-पुरुष संबन्धी और ऐतिहासिक तथा पौराणिक घटनाओं को तौलने का प्रयत्न कर रहे हैं।

ऐतिहासिक और पौराणिक पात्र, विषय और घटनाओं को लेकर आज के नाटककार में रुचि दिखाई नहीं दे रही है। कारण स्वयं भारत के इतिहास को तोडमरोडकर लिखनेवाले इतिहासकार ही जाने या पौराणिक पात्र और घटनाओं को अपने राजनैतिक या आर्थिक स्वार्थ तथा प्रचार के लिए तड़पनेवाले साहित्यकार ही जाने। पता नहीं क्यों? आज का नाटककार परम्परा से अनुमोदित मूल्यों को स्वीकारता भी नहीं, बल्कि उनके प्रति विश्वास रखने वालों को धिक्कारता जरूर है। पाप-पुण्य, झूठ-सत्य, अप्रामाणिकता और नेकी, नीति-अनीति इन सबको जानते हुए भी वह भोगने योग्य सत्य, मुखौटे की जिन्दगी, ओढ़े हुए मूल्यों की वकालत करता है। और भयंकर डरावने विश्वास से साथ दूसरों पर उनको थोपने का प्रयत्न भी करता है। इन कारणों से नाटककार अत्याचार, अनीति, भ्रष्टाचार, पापाचार का विरोध तो करता है, मगर जीवनादर्श की स्थापना करने में सच्चे मन से सक्षम त्याग से सिद्ध नहीं होता। क्षणिक जीवन में दुश्मनी को दूर रखने के लिए जागृत रहना जरूरी है। नाटक में नाटकीयता होने पर भी जीवन में नाटकीयता सह्य नहीं है। क्योंकि सत्य का उज़ागर हो कर ही रहता है।

संदर्भ सूची

1. डॉदिलीप मेहरा ., दृश्यम विविध परिप्रेक्ष्य माध्यश्रव्य-, पृ 24 .सं.
2. डॉपशुपती नाथ उपाध्य.ाय, हिन्दी नाटक एवं रंगमंच, पृ37 .सं.
3. डॉसाबू .टी ., मोहन राकेश के नाटकों के पात्रषणमनोवैज्ञानिक विश्ले :, पृ80 .सं.
4. डॉराजकिशोर सिंह एवं दुर्गा शंकर., भारतीय और पाश्चात्य काव्यशास्त्र, पृ 150 .सं.
5. डॉपशुपती नाथ उपाध्याय., हिन्दी नाटक एवं रंगमंच, पृ57 .सं.
6. डॉशमली एम एम ., डॉशंकर शेष .,आधुनिक हिन्दी के प्रतिनिधि नाटककार, पृ133 .सं.
7. शंकरशेष, एक और द्रोणाचार्य, पृ 10-5 .सं.